Jurgen Habermas

नव मार्क्सवादी सिद्धान्तवेत्ता एवं समाज वैज्ञानिक हैबरमास का अपने दार्शनिक एवं चिन्तन की दृष्टि से प्रमुख फ्रैंकफर्ट स्कूल की परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान है।

नाजीवाद एवं द्वितीय विश्वयुद्ध का इनके विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा था। इन्होंने जर्मनी के अग्रणी अध्ययन संस्थानों में शोध एवं अध्यापन कार्य किए।

वर्ष 1956 में इन्हें फ्रैंकफर्ट स्कूल छोड़ना पड़ा। पुनः 1962 में इन्हें Philosophy का Extraordinary Professor का पद हैडलबर्ग विश्वविद्यालय में प्रस्तावित किया गया। 2005 में होलबर्ग इन्टरनेशनल मेमोरियल पुरस्कार मिला।

उनकी रचना — The Structural Transformation of the Public sphere, 1962.
- On The Logic of Social Science, 1967, ~~Between~~
- ~~Religion~~, ~~Philosophical Naturalism and~~
- ~~Between~~ Naturalism and Religion; Philosophical Essays प्रकाशित हुआ।

हैबरमास के विचारों पर हेगल, कान्ट, कार्ल-मार्क्स, फ्रैंकफर्ट स्कूल के नव मार्क्सवादी, वेबर आदि का प्रभाव पड़ा।

हैबरमास के अनुसार आज Science and Technology के विकास के फलस्वरूप तर्कबुद्धि की भूमिका बदल गई है। पूर्व के सामंती एवं पिछड़े समाजों में जहां जीवन की समस्याओं को तर्कबुद्धि के द्वारा हल करने का प्रयास किया जाता था वहीं अब व्यक्ति यथास्थिति को बनाए रखने में ज्यादा रुचि लेता है। आज तर्कबुद्धि का प्रयोग विज्ञान और तकनीकी कार्यकुशलता को आगे बढ़ाने में किया जाता है। इस क्रम में मानव जीवन के मौलिक प्रश्न, यथार्थता और प्रगति पर विचार करना छोड़ दिया गया है।

हैबरमास सिद्धान्तों की दुनिया में एक आलोचनात्मक सिद्धान्तवेत्ता के रूप में जाने जाते हैं। आलोचनात्मक सिद्धान्तवेत्ता के रूप में मार्क्स को अपना केन्द्र मानकर उनमें भी संशोधन करते हैं। एक ओर वे उत्तर आधुनिकता को नकारते हैं तो दूसरी ओर आधुनिकता में भी संशोधन करते हैं। हैबरमास जहाँ समाज में सोपानीकृत व्यवस्था को स्वीकार करते हैं तो दूसरी ओर स्वतन्त्र एवं समान समाज की वकालत करते हैं। उनके अनुसार नैतिकता का एक ऐसा सार्वभौमिक नियम बनाना चाहिए जो व्याकरण की भाँति हर युग में मान्य हो।

हैबरमास के अनुसार मनुष्य के सम्पूर्ण विकास के लिए ज्ञान आवश्यक है। उनके अनुसार उद्देश्यपूर्ति के लिए ज्ञान का विकास आवश्यक है। ~~उनके अनुसार~~ ज्ञान प्रत्ययवादी है क्योंकि यह अनुभविक विश्लेषण पर आधारित होता है। मनुष्य की काम करने की कुशलता एवं संसार की क्षमता विभिन्न प्रकार के ज्ञान को जन्म देती है। प्रत्ययवादी ज्ञान भाषा के सम्पूर्ण माध्यम से समाज में फैलता है और अन्ततः मनुष्य के विकास में सहायक होता है।

ज्ञान व्यवहारिक हितों की भी पूर्ति करता है। मनुष्य विभिन्न अन्तःक्रियाओं को भाषा के माध्यम से समझता है। भाषा ज्ञान का माध्यम है। (उदाहरण के लिए अपने हाथ की दो अँगुलियों का V के रूप में खड़ा करके दिखाने से victory होता है)

ज्ञान उद्धारक भी होता है। इसका सम्बन्ध भी अन्तःक्रिया एवं संवाद से होता है। इसी ज्ञान का सहारा लेकर शक्ति प्राप्ति के लिए किसी समाज में संघर्ष होता है। यह ज्ञान अपने स्वरूप में मुक्ति भी होता है।

मार्क्सवाद एवं पूँजीवाद संबंधी सम्बन्धी दृष्टिकोण

मार्क्सवाद एवं पूँजीवाद बीसवीं सदी के दो प्रमुख दृष्टिकोण हैं। किन्तु ये दोनों ही तकनीकी वर्चस्व स्थापित करने की होड़ में अपने स्वरूप में बदलते जा रहे हैं।

जहाँ मार्क्सवाद एक प्रगतिशील एवं परिवर्तनवादी विचारधारा थी वहाँ आज यह आलोचनात्मक दृष्टिकोण को नकार रहा है। दूसरी ओर पूँजीवादी समाज में राज्य अपनी भूमिका बदलकर अपना प्रभुत्व स्थापित कर रहा है जो परिवर्तन एवं समाज में आलोचनात्मक प्रवृत्ति को रोकता है। आज नौकरशाही अपना वर्चस्व स्थापित करने में लगा है तो दूसरी ओर मनुष्य की तर्कबुद्धि की भूमिका तकनीकी कार्यकुशलता तक ही सीमित हो गई। आज लोकतंत्र में उत्पादनकर्ता एवं उपभोक्ता जैसी परम्परा विकसित हो गई है जिसके फलस्वरूप यह अवधारणा जनता पर लादी हुई सी हो गई है। पुनः हैबरमास यहाँ तक की संचार माध्यम भी शक्तिशाली वर्ग के हितों का पोषण करने में जुटी है। इस व्यवस्था के लिए तर्कबुद्धि का अभाव मानता है।

हैबरमास की मान्यता है कि आज पूँजीवादी व्यवस्था स्वयं अपनी वैधता के संकट से जूझ रहा है। परम्परागत संस्थाएं किसी पौराणिक धार्मिक एवं दार्शनिक आधार पर मान्यता प्राप्त करती थी तथा सम्पूर्ण समाज उनकी वैधता को स्वीकार करता था किन्तु आधुनिक युग में वैज्ञानिक जानकारी एवं तकनीकी उपलब्धि ने

इन परम्परागत वैधता का स्थान ले लिया।
आज लाभ एवं समान विनिमय को सामाजिक संगठन
का आधार मान लिया गया है। इसके फलस्वरूप
राज्य की भूमिका बढ़ती जा रही है आज उत्पादन
सम्बन्ध राजनीतिक गतिविधियों से पूरी तरह
जुड़ गया है। राज्य एक ओर तो वंचित
वर्गों के हितों की पूर्ति में लगा है तो दूसरी ओर
साधन सम्पन्न लोगों के हित के विरुद्ध कोई
फैसला लेने में समर्थ नहीं। इस तरह राजतन्त्र
परस्पर विरोधी मांगों के बीच झूलने लगा है।
हैबरमास के अनुसार आज पूँजीवाद
में उपनिवेशवाद की समस्या जोरों पर है परन्तु
इसके साथ ही कुछ नए सामाजिक आन्दोलन जैसे —
~~नैतिक~~ नैतिक आन्दोलन, नारी आन्दोलन, पर्यावरण रक्षा
आन्दोलन, सांस्कृतिक आन्दोलन है जो
राजनीतिक जीवन से बाहर भी कार्य करते हैं।
इनका उद्देश्य विश्व को विवेकसम्मत रूप देना है,
जीवन को नई चेतना को प्रदान करना है।

छात्र आन्दोलन सम्बन्धी विचार — पाश्चात्य राजनीतिक
समाजों में आर्थिक असफलता ने पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति
लोगों में अविश्वास जगा दिया तथा इस धारणा को
बल दिया कि संसद में उनकी आवाज को दबा दिया
जाता है। अतः नव प्रगतिवादियों ने 1950-60 में
छात्र राजनीति एवं छात्र आन्दोलन के रूप में एक गैर-
संसदीय मंच बनाया। हैबरमास द्वारा "Structural Trans-
formation of the Public Sphere" नामक पुस्तक
लिखने का मूल उद्देश्य अधिक से अधिक संख्या में
छात्रों को 'शोसलिस्ट जर्मन स्टूडेंट्स' नामक दल में
शामिल करना था। इस पुस्तक के जरिए हैबरमास ने
जर्मन फेडरल रिपब्लिक की अन्तर्निहित खामियों को
को उजागर किया।

छात्र आन्दोलन की सबसे पहली माँग थी कि पत्र-पत्रिकाओं को उनकी मूल भूमिका के नजदीक लाया जाए। ये पत्रिकाएँ छात्र आन्दोलन की मुखर आलोचनाएँ प्रस्तुत करता था फलतः छात्रों की यह क्रांति उग्र होती गई।

उनकी दूसरी माँग थी विश्वविद्यालय सुधार उनके अनुसार शिक्षक बुद्धिजीवियों ने विश्वविद्यालय में अलोकतांत्रिक एवं अभिजनवादी भावना को बढ़ावा दिया था तथा सामाजिक तथा शैक्षणिक असमानताओं को प्रबल किया।

इन आन्दोलन की तीसरी माँग यह थी कि तीसरी दुनिया के देशों में वामपंथी शोषण बंद हो तथा एक शोषणमुक्त समाज का निर्माण हो। परन्तु हर संगठन की अपनी एक सीमा होती है। छात्रों को इन सीमाओं को लांघकर सफल नहीं होना चाहिए।

हेबरमास प्रत्यक्षवाद, आर्थिक नियतिवाद और उत्तर आधुनिकतावाद के भी कटु आलोचक रहे हैं। उनका मानना है कि दमन और शोषण की आलोचना मात्र से कोई निदान नहीं होगा, पूँजीवादी व्यवस्था पर प्रहार करके ही दमन और शोषण से छुटकारा सम्भव है।

हेबरमास लोकतन्त्र के उदारवादी एवं गणतन्त्रात्मक दोनों ही सिद्धान्तों की आलोचना करता है। उसके अनुसार दोनों ही सिद्धान्त यह बताने में असमर्थ है कि आज लोकतन्त्र प्रभावशाली ढंग से कैसे काम करे।

हेबरमास उदारवादी तथा गणतन्त्रात्मक दोनों ही सिद्धान्तों से कुछ तत्व लेकर विमर्श-सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। उदारवादी सिद्धान्त से वह राज्य व समाज के मध्य अन्तर को लेता है तथा गणतन्त्रात्मक सिद्धान्त से वह जनता की सक्रिया व सामूहिक भावना को लेकर उसे राज्यक्षेत्र में न स्थापित करके लोकक्षेत्र में स्थापित करता है।

नागरिकों द्वारा लोकवृत्त में विचारों एवं दृष्टिकोणों के माध्यम से लगातार विमर्श चलता रहता है जो इंगित करता है कि एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना कैसे होगी। इस प्रक्रिया से उपजे एवं संशोधित विचार राजनीतिक क्षेत्र तक पहुँचते हैं जहाँ राजनीतिक संस्थाएँ उन्हें 'सामान्य उद्देश्य' के ढाँचे में ढाल देती हैं। राजनीतिक संस्थाओं तक विचारों के सम्प्रेषण से तीन महत्वपूर्ण उद्देश्य पूर्ण होते हैं - पहला यह एक संप्रेषणात्मक प्रक्रिया है जो राजनीतिक निर्णयों को जनता के विचारों से सम्बद्ध कर सकती है, निर्णयों को लोकतांत्रिक वैधता प्रदान करती है। दूसरा यह एक ऐसी प्रक्रिया भी है जो विचारों को परिवर्तित कर 'सामान्य हित' के अनुरूप बनाती है। तीसरा - यह विचारों एवं दृष्टिकोणों को कानून का स्वरूप देती है। यह कानून प्रशासनिक संस्थाएँ लागू करती हैं। जो जनता को अधिकार, कर्तव्य एवं अपेक्षाएँ प्रदान कर लोकवृत्त में एक नए विमर्श की शुरुआत करते हैं। इस प्रकार हैबरमास ने लोकतन्त्र के उदारवादी एवं गणतन्त्रात्मक सिद्धान्तों के बीच की खाई को अपना विमर्श सिद्धान्त द्वारा पाटने की कोशिश की है।